[१०]

अपरिग्रह : मानव-जीवन का भूषण

हजारों धर्मोपदेशकों के उपदेश, प्रचारकों का प्रचार और राज्य के नवीन अपराध निरोधक नियमों के बावजूद भी जनता में पाप क्यों नहीं कम हो रहे, लोभ को सब कोई बुरा कहते हैं, फिर भी देखा जाता है—कहने वाले स्वयं अपने संग्रह को बढ़ाने की ओर ही दौड़ रहे हैं। ऐसा क्यों ? रोग को मिटाने के लिए उनके कारणों को जानना चाहिए।

पाप घटाने के लिये भी उसके कारणों को देखना आवश्यक है। शास्त्र में आहार, भय, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया और लोभ आदि दस संज्ञाएँ बताई गई हैं। संसार के आबाल वृद्ध जीवमात्र इन संज्ञाओं से त्रस्त हैं। सामायिक के बाद, हम प्रति दिन आलोचना करते हैं कि चार संज्ञाओं में से कोई संज्ञा की हो "तस्स मिच्छामि दुक्कड़ं" पर किसी संज्ञा में कमी नहीं आती। आहार, भय और मैथुन संज्ञा में अवस्था पाकर फिर भी कमी आ सकती है, पर लोभ-परिग्रह संज्ञा अवस्था जर्जरित होने पर भी कम नहीं होती। इसके लिये सूत्रकार ने ठीक ही कहा है—

"जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढ़इ।"

लाभ वृद्धि के साथ लोभ भी बढ़ता है, इसीलिए तो अनुभवियों ने कहा है—"तृष्णैका तरुणायते", समय आने पर सब में जीर्णताजन्य दुर्बलता आती है, पर करोड़ों-अरबों वर्ष बीतने पर भी तृष्णा बूढ़ी नहीं होती, बल्कि वह तरुण ही बनी रहती है।

लोभेच्छा की वृद्धि के, शास्त्र में अन्तरंग और बहिरंग दो कारण बताये हैं। लोभ, मोह या रतिराग का उदय एवं मूर्च्छा भाव आदि अन्तर के मूल कारण हैं। खान-पान, अच्छा रहन-सहन, यान-वाहन, भवन-भूषण आदि दूसरे के बड़े-चढ़े परिग्रह को देखने-सुनने से लोभ भावना बढ़ती है। परिग्रह का चिन्तन भी लोभ वृद्धि का प्रमुख कारण है। मेरे पास कौड़ी नहीं, स्वर्ण-रत्न के आभूषण नहीं और अमुक के पास हैं, इस प्रकार अपनी कमी और दूसरों की बढ़ती का चिन्तन करने से परिग्रह संज्ञा बढ़ती है।

परिग्रह घटाइये, सादगी बढ़ाइये

गाँव में परिग्रह का प्रदर्शन कम है तो वहाँ वस्त्राभूषण आदि के संग्रह का नमूना भी अल्प दृष्टिगोचर होता है। शहर और महाजन जाति में

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

परिग्रह का प्रदर्शन अधिक है तो वहां पाप मानते हुए भी वस्त्राभूषण, धन-धान्य आदि का संग्रह अधिक दृष्टिगोचर होता है, क्योंकि परिग्रह से उन साधनों से ही आदमी का मूल्यांकन होता है । कितना ही व्रती, सेवाभावी, गुणी एवं विद्वान् भी क्यों न हो, सादी भेष-भूषा में हो तो आदर प्राप्त नहीं करता, यदि बढ़िया वेश और उच्च स्तरीय आकर्षक रहन-सहन हो तो दर्शकजनों की दृष्टि में बड़ा माना जाता है । यही दृष्टि-भेद संग्रह-वृत्ति और लोभ-वृद्धि का प्रमुख कारण है ।

अपरिग्रह भाव को बढ़ाने के लिए सामाजिक व्यवस्था और बाह्य वातावरण सादा एवं प्रदर्शन रहित होना चाहिए ।

आंग्ल शासकों की अधीनता से मुक्त होने को गांधीजी ने सादा और बिना प्रदर्शन का अल्प परिग्रही जीवन अपनाया था । बड़े-बड़े धनी, उद्योगपति और अधिकारी भी उस समय सादा जीवन जीने लगे । फलस्वरूप उन दिनों सेवा और सेवावृत्ति को ऊँचा माना जाने लगा । लोगों में न्यायनीति, सेवा और सदाचार चमकने लगा । आज फिर सामाजिक स्तर से देश को सादगी का विस्तार करना होगा, प्रदर्शन घटाना होगा । जब तक ऐसा नहीं किया जाय, तब तक परिग्रह का बढ़ता रोग कम नहीं ही सकता ।

प्रदर्शन करने वाले के मन में ईर्ष्या, मोह और अहंकार उत्पन्न होता है और दूसरों के लिए उसका प्रदर्शन, ईर्ष्या, हरणबुद्धि, लालच एवं आर्त्त-उत्पत्ति में कारण होता है, अतः प्रदर्शन को पाप-बुद्धि का कारण समझ कर त्यागना परिग्रह संज्ञा घटाने का कारण है । आज संसार में परिग्रह की होड़ लगी हुई है । ऐसी परिस्थिति में परिग्रह भाव घटाने में निम्न भावनाएँ अत्यन्त उपयोगी हो सकती हैं—

१. परिग्रह भय, चिन्ता और चंचलता का कारण एवं क्षणभंगुर है ।

२. असंग्रही वृत्ति के पशु-पक्षी मनुष्य की अपेक्षा सुखी और प्रसन्न रहते हैं ।

३. परिग्रह मानव को पराधीन बनाता है, परिग्रही बाह्य पदार्थों के अभाव में चिन्तित रहता है ।

४. परिग्रह की उलझन में उलझे जीव को शान्ति नहीं मिलती ।

५. सन्तोष ही सुख है । कहा भी है—

"गोधन, गजधन, रतन धन, कंचन खान सुखान ।
जब आवे सन्तोष धन, सब धन धलि समान ।।"

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

६. जिसको चाह है, वह अरबों की सम्पदा पाकर भी दुःखी है। चाह मिटने पर ही चिन्ता मिटती है। सन्तों ने ठीक कहा है—

"सन्तोषी सदा सुखी, दुःखी तुष्णावान्।"

संसार के अगणित पशु-पक्षी और कीट पतंगादि जीव, जो संग्रह नहीं करते, वे मानव से अधिक निश्चिन्त एवं शोक रहित हैं। संग्रहवान आसक्त मानव से वह अधिक सुखी है, जो अल्प संग्रही और आसक्ति रहित है। संसार की सारी सम्पदा किसी एक असन्तोषी को मिल जाय, तब भी उस लोभी की इच्छा पूर्ण नहीं हो सकती, क्योंकि इच्छा मानव के समान अनन्त है। ज्ञानियों ने कहा है—मानव, इस नश्वर सम्पदा के पीछे भान भूलकर मत दौड़। यह तो पापी जीव को भी अनन्त बार मिल गई है। यदि सम्पदा ही मिलानी है, तो ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आत्मिक सम्पदा मिला, जो शाश्वत आनन्द को देने वाली है, अन्यथा एक लोकोक्ति में कहा गया है—

"सुत दारा, अरु लक्ष्मी, पापी के भी होय।
सन्त समागम, प्रभु कथा, दुर्लभ जग में दोय॥"

पैसे वाले बड़े नहीं, बड़े हैं सद्गुणी, जिनकी इन्द्र भी सेवा करते हैं।

परिग्रह–मर्यादा का महत्त्व

परिग्रह-परिणाम पाँच अणुव्रतों में अन्तिम है और चार व्रतों का संरक्षण करना एवं बढ़ाना इसके आधीन है। परिग्रह को घटाने से हिंसा, असत्य, अस्तेय, कुशील, इन चारों पर रोक लगती है। अहिंसा आदि चार व्रत अपने आप पुष्ट होते रहते हैं। इस व्रत के परिणामस्वरूप जीवन में शान्ति और सन्तोष प्रकट होने से सुख की वृद्धि होती है, निश्चितता और निराकुलता आती है। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने से धर्म-क्रिया की ओर मनुष्य का चित्त अधिकाधिक आकर्षित होता है। इस व्रत के ये वैयक्तिक लाभ हैं, किन्तु सामाजिक दृष्टि से भी यह व्रत अत्यन्त उपयोगी है। आज जो आर्थिक वैषम्य दृष्टिगोचर होता है, इस व्रत के पालन न करने का ही परिणाम है। आर्थिक वैषम्य इस युग की एक बहुत बड़ी समस्या है। पहले बड़े-बड़े भीमकाय यंत्रों का प्रचलन न होने कारण कुछ व्यक्ति आज की तरह अत्यधिक पूंजी एकत्र नहीं कर पाते थे; मगर आज यह बात नहीं रही। आज कुछ लोग यन्त्रों की सहायता से प्रचुर धन एकत्र कर लेते हैं, तो दूसरे लोग धनाभाव के कारण अपने जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति करने से भी वंचित रहते हैं। उन्हें पेट भर रोटी, तन ढकने को वस्त्र और औषध जैसी चीजें भी उपलब्ध नहीं। इस स्थिति का सामना करने के लिए

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

अनेक वादों का जन्म हुआ है। समाजवाद, साम्यवाद, सर्वोदयवाद आदि इसी के फल हैं। प्राचीन काल में अपरिग्रहवाद के द्वारा इस समस्या का समाधान किया जाता था। इस वाद की विशेषता यह है कि यह धार्मिक रूप में स्वीकृत है। अतएव मनुष्य इसे बलात् नहीं, स्वेच्छा पूर्वक स्वीकार करता है। साथ ही धर्मशास्त्र महारंभीं यंत्रों के उपयोग कर पाबंदी लगा कर आर्थिक वैषम्य को उत्पन्न नहीं होने देने की भी व्यवस्था करता है। अतएव अगर अपरिग्रह व्रत का व्यापक रूप में प्रचार और अंगीकार हो, तो न अर्थ वैषम्य की समस्या विकराल रूप धारण करे और न वर्ग संघर्ष का अवसर उपस्थित हो। मगर आज की दुनिया धर्मशास्त्रों की बात सुनती कहाँ है। यही कारण है कि संसार अशान्ति और संघर्ष की क्रीड़ाभूमि बना हुआ है और जब तक धर्म का आशय नहीं लिया जायगा, तब तक इस विषम स्थिति का अन्त नहीं आएगा।

देशविरति धर्म के साधक (श्रावक) को अपनी की हुई मर्यादा से अधिक परिग्रह नहीं बढ़ाना चाहिए। उसे परिग्रह की मर्यादा भी ऐसी करनी चाहिए कि जिससे उसकी तृष्णा पर अंकुश लगे, लोभ में न्यूनता हो और दूसरे लोगों को कष्ट न पहुँचे।

सर्वविरत साधक (श्रमण) का जीवन तो और भी अधिक उच्चकोटि का होता है। वह आकर्षक शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श पर राग और अनिष्ट शब्द आदि पर द्वेष भी नहीं करेगा। इस प्रकार के आचरण से जीवन में निर्मलता बनी रहेगी। ऐसा साधनाशील व्यक्ति चाहे अकेला रहे या समूह में रहे, जंगल में रहे, या समाज में रहे, प्रत्येक स्थिति में अपना व्रत निर्मल बना सकेगा।

स्वाध्याय की भूमिका

परिग्रह वृत्ति को घटाने में स्वाध्याय की असरकारी भूमिका होती है। स्वाध्याय वस्तुतः अन्तर में अलौकिक प्रकाश प्रकट करने वाला है। स्वाध्याय आत्मा में ज्योति जगाने का एक माध्यम है, एक प्रशस्त साधन है, जिससे प्रसुप्त आत्मा जागृत होती है, उसे स्व तथा पर के भेद का ज्ञान होता है। स्वाध्याय से आत्मा में स्व-पर के भेद के ज्ञान के साथ वह स्थिति उत्पन्न होती है, निरन्तर वह भूमिका बनती है, जिसमें आत्मा स्व तथा पर के भेद को को समझने में प्रतिक्षण जागरूक रहती है। संक्षेप में कहा जाय तो स्वाध्याय के द्वारा स्व-पर के भेद का ज्ञान प्राप्त होता है। जिस प्रबुद्ध आत्मा को स्व तथा पर के भेद का ज्ञान प्राप्त हो गया, उसकी पौद्गलिक माया से ममता स्वतः ही कम हो जायगी।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ममता घटने पर दान की प्रवृत्ति

स्व-पर के भेद का बोध हो जाने की स्थिति में ही अपने शरीर पर साधक की ममता कम होगी । शरीर एवं भोज्योपभोज्यादि पर ममता कम होने पर वह तप करने को उद्यत होगा । भौतिक सामग्री पर ममता घटेगी, तभी व्यक्ति के अन्तर्मन में दान देने की प्रवृत्ति बलवती होगी । ममता घटेगी, तभी सेवा की वृत्ति उत्पन्न होगी, क्योंकि ये सारी चीजें ममता से सम्बन्धित हैं । आलोचना का व्यक्ति के स्वयं के जीवन-निर्माण से सम्बन्ध है । आलोचना वस्तुतः व्यक्ति के स्वयं के जीवन निर्माण का प्रमुख साधन है, जबकि दान स्व और पर दोनों के जीवन निर्माण का साधन है । दान का सम्बन्ध दूसरे लोगों के साथ स्वधर्मी बन्धुओं के साथ आता है और इसमें स्व-कल्याण के साथ पर-कल्याण का दृष्टिकोण अधिक होता है । इसका मतलब यह नहीं है कि दान देते समय दानदाता द्वारा स्व-कल्याण को पूर्णतः ठुकरा दिया जाता है । क्योंकि पर-कल्याण के साथ स्व-कल्याण का अविनाभाव सम्बन्ध है । पर-कल्याण की भावना जितनी उत्कृष्ट होगी, उतना ही अधिक स्व-कल्याण स्वतः ही हो जायगा । जो स्व-कल्याण से विपरीत होगा, वह कार्य व्यवहारिक एवं धार्मिक, किसी पक्ष में स्थान पाने लायक नहीं है ।

तो दान की यह विशेषता है कि वह स्व और पर दोनों का कल्याण करता है । दान देने की प्रवृत्ति तभी जागृत होगी, जब कि मानव के मन में अपने स्वत्व की, अपने अधिकार की वस्तु पर से ममता हटेगी । ममत्व हटने पर जब उसके अन्तर में सामने वाले के प्रति प्रमोद बढ़ेगा, प्रीति बढ़ेगी और उसे विश्वास होगा कि इस कार्य में मेरी सम्पदा का उपयोग करना लाभकारी है, कल्याणकारी है, तभी वह अपनी सम्पदा का दान करेगा ।

किसान अपने घर में संचित अच्छे बीज के दानों को खेत की मिट्टी में क्यों फेंक देता हैं ? इसीलिये कि उसे यह विश्वास है कि यह बढ़ने-बढ़ाने का रास्ता है । अपने कण को बढ़ाने का यही माध्यम है कि उसे खेत में डाले । जब तक बीज को खेत में नहीं डालेगा, तब तक वह बढ़ेगा नहीं । पेट में डाला हुआ कण तो खत्म हो जायगा, जठराग्नि से जल जायगा, किन्तु खेत में, भूमि में डाला हुआ बीज फलेगा, बढ़ेगा । ठीक यही स्थिति दान की भी हैं । थोड़ा सा अन्तर अवश्य है ।

बीज को खेत में डालने की अवस्था में किसान की बीज पर से ममता छूटी नहीं है । बीज को खेत में फेंकने में अधिक लाभ मानता हैं, इसलिये फेंकता है । पर हमारे धर्म पक्ष में दान की इस तरह की स्थिति नहीं है । दान की प्रवृत्ति में जो अपने द्रव्य का दान करता है, वह केवल इस भावना से ही दान

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं करता कि उससे उसको अधिक लाभ होगा, बल्कि उसके साथ यह भावना भी हैं कि—यह परिग्रह दुःखदायी है, इससे जितना अधिक स्नेह रखूँगा, मोह रखूंगा, यह उतना ही अधिक क्लेशवर्द्धक तथा आर्त्त एवं रौद्र-ध्यान का कारण बनेगा।

'स्थानांग' सूत्र में श्रावक के जो तीन मनोरथ बताये गये हैं, उनमें पहले मनोरथ में परिग्रह-त्याग को महती निर्जरा का महान् कारण बताते हुए उल्लेख किया गया है—

"तिहिं ठाणेहिं समणोवासए महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ तं जहाकया णं अहं अप्पं वा बहुअं वा परिग्गहं परिचइस्सामि,·····एवं समणसा सवयसा सकायसा जागरमाणे समणोवासए महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ।"

अर्थात्—तीन प्रकार के मनोरथों की मन, वचन और क्रिया से भावना भाता हुआ श्रावक पूर्वोपार्जित कर्मों को बहुत बड़ी मात्रा में नष्ट और भवाटबी के बहुत बड़े पथ को पार कर लेता हैं। परिग्रह घटाने सम्बन्धी मनोरथ इस प्रकार हैं—अरे! वह दिन कब होगा, जब मैं अल्प अथवा अधिकाधिक परिग्रह का परित्याग कर सकूंगा।

'स्थानांग' सूत्र में जिस प्रकार श्रावक के तीन मनोरथों का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार साधु के तीन मनोरथों का भी उल्लेख है। गृहस्थ का जीवन व्रत-प्रधान नहीं, शील-प्रधान और दान-प्रधान है। साधु का जीवन संयम-प्रधान एवं तप-प्रधान हैं। गृहस्थ के जीवन की शील और दान—ये विशेषताएँ हैं। गृहस्थ यदि शीलवान् नहीं है तो उसके जीवन की शोभा नहीं। जिस प्रकार शीलवान् होना गृहस्थ जीवन का एक आवश्यक अंग है, उसी तरह अपनी संचित सम्पदा में से उचित क्षेत्र में दान देना, अपनी सम्पदा का विनिमय करना और परिग्रह का सत्पात्र में व्यय करना, यह भी गृहस्थ-जीवन का एक प्रमुख भूषण और कर्तव्य हैं।

धर्मस्थान में अपरिग्रही बनकर आना चाहिए

धर्मस्थान में आने वाले भाई-बहिनों से यह कहना है कि सबसे पहले ध्यान यह रखा जाय कि अपरिग्रहियों के पास जाते हैं तो वे ज्यादा से ज्यादा अपरिग्रहियों का रूप धारण करके जायें। हम लोग क्या हैं ? अपरिग्रही। हमारे पास सोने का कन्दोरा है क्या ? नहीं, बढ़िया सूट है क्या ? नहीं। हमारे पास पैसा होने की शंका है क्या ? नहीं, हमारे पास सिंहासन भी रजत

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

का, सोने का, हीरा-मोती जटित है क्या ? नहीं। जैन साधु अपने पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं रख सकता, यहाँ तक कि चश्मे की डण्डी में किसी धातु की कील भी हो तो हमारे काम नहीं आयेगा। जब तक दूसरा नहीं मिले, तब तक भले ही रखें।

आपके सन्त इतने अपरिग्रही और आप धर्मस्थान में आवें तो सोचें कि बढ़िया सूट पहन कर चलें। बाई सोचती है कि सोने के गोखरू हाथों में पहन लें, सोने की लड़ गले में डाल लें, सोने की जंजीर कमर में बाँध लें, यहाँ तक कि माला के मनके भी लकड़ी चन्दन के क्यों हों, चांदी के दानों की माला बनवा लें।

इस प्रकार आप धर्मक्रिया में परिग्रह रूप धारण करेंगे, जरा-जरा सी लेने-देने की सामग्री में परिग्रह से मूल्यांकन होगा, तो चिन्ता पैदा होगी या नहीं ? चोरी होगी तो आप कितनों को लपेटे में लेंगे ? वेतन पर काम करने वाले कार्यकर्ता भी लपेटे में आयेंगे, कमेटी के व्यवस्थापक भी लपेटे में आयेंगे।

दूसरे लोग कहें न कहें लेकिन हम अपरिग्रही हैं, इसलिए कहता हूँ कि अपरिग्रह के स्थान पर तो ज्यादा से ज्यादा अपरिग्रह रखने की ही भावना आनी चाहिए।

अपरिग्रह : मानव-जीवन का भूषण

परिग्रह की ममता कब कम होगी ? जबकि स्व का अध्ययन करोगे। अपने आप को समझ लोगे तो जान लोगे कि सोने से आदमी की कीमत नहीं है, सोने के आभूषणों से कीमत नहीं, लेकिन आत्मा की कीमत है सदाचार से, प्रामाणिकता से, सद्गुणों से। सत्य और क्रियावादी होना भूषण है। दान चाहे देने के लिए पास में कुछ भी नहीं हो, जो भी आवे उसका योग्यता के कारण सम्मान करना चाहिए। तिरस्कार करके नही निकालना, यह हाथ का भूषण है। गुणवान को नमस्कार करना यह सिर का भूषण है। परिग्रह को घटाकर सत्संग में जाना, कहीं किसी की सहायता के लिए जाना यह पैरों का भूषण है। सत्संग में ज्ञान की प्राप्ति होगी।

मनुष्य का शरीर यदि सोने से लदा हुआ है, लेकिन वह सद्गुणी नहीं है, तो निन्दनीय है।

□ □ □

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org